यज्ञ

यज्ञ शब्द **"यज् देव-पूजासंगतिकरण-दानेषु"** धातु से **"नङ्."** प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। यज् धातु के तीन अर्थ हैं- देवपूजा, संगतिकरण तथा दान। देवपूजा से तात्पर्य देवों की पूजा से है। संगतिकरण का अर्थ है- एक तत्त्व की दूसरे तत्त्व में परिणति । दो पदार्थों को परस्पर मिलाने वाला तत्त्व भी यज्ञ ही है। दान शब्द भी 'दा दाने' और 'दो अवखण्डने' इन दो धातुओं से बनता है। इसलिए इसके दो अर्थ हैं- देना अर्थात् किसी वस्तु पर अपने स्वत्व को छोड़ कर उसे दूसरे को दे देना; और टुकड़े करना अर्थात् अपने किसी अंश को अपने से पृथक् करके दूसरे में अर्पित कर देना। यह दोनों प्रकार का दान भी यज्ञ के ही अन्तर्गत है।

यज्ञ दो प्रकार का है- एक प्राकृत और दूसरा कृत्रिम । कृत्रिम यज्ञ का स्वरूप बताते हुए कहा गया है- द्रव्यदेवता-त्यागो यागः। अर्थात् किसी देवता के उद्देश्य से हविः आदि वस्तु का त्याग ही यज्ञ है। प्रकृति में निरन्तर यज्ञ चलता रहता है, उसी के अनुकरण पर कृत्रिम यज्ञों का विधान हुआ है– 'देवान् अनुविधा वै मनुष्याः, यद्देवा अकुर्वन्, तदहं करवाणि' अर्थात् मनुष्य भी देवों की तरह ही हैं, जो देवताओं ने किया या कर रहे हैं, वही मैं करता हूँ।

पण्डित मधुसूदन ओझा ने शतपथब्राह्मण में उद्धृत यज्ञसम्बन्धी वचनों के आधार पर यज्ञ का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। कृत्रिम यज्ञों के स्वरूप परिचय के लिए उन्होंने यज्ञसरस्वती एवं यज्ञमधुसून नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

एक वस्तु की जब दूसरी में आहुति हो जाती है अर्थात् एक वस्तु दूसरी वस्तु को अपने में ले लेती है एवं उस वस्तु को वह अपना ही स्वरूप बना लेती है, इसी को यज्ञ कहते हैं-

यदन्यदन्यत्र हुतं स यज्ञो यद् दृश्यते सर्वमिदं स यज्ञः।

प्रकृति यज्ञ चार प्रकार के हैं- ब्रह्म-कर्म यज्ञ, जीव- ईश्वर यज्ञ, प्राण-मन का यज्ञ और ज्ञान-क्रिया यज्ञ।

ब्रह्मकर्मयज्ञ-संसार में ब्रह्म और कर्म दो तत्त्व हैं । ब्रह्म एक है और कर्म अनेक हैं। जब नानास्वरूप वाला कर्म उस एक ब्रह्म में लीन हो जाता है तो सृष्टि का प्रलय हो जाता है। इसके विपरीत निष्क्रिय ब्रह्म को जब कर्म अपने में ले लेता है तो ब्रह्मस्वरूप एकत्वभाव में मोहित हो जाता है और कर्म का नानात्व जागृत हो जाता है । इसे ही संसार या सृष्टि कहते हैं। इस प्रकार से प्रलय एवं सृष्टि का स्वरूप बनाने वाला यह ब्रह्मकर्मात्मक यज्ञ है।

जीव एवं ईश्वर का यज्ञ- स्वयम्भू- परमेष्ठी-सूर्य-चन्द्रमा एवं पृथिवी ऐसी-ऐसी कई शाखाओं वाला जो एक अश्वत्थ ईश्वर है ।उस ईश्वर में जब हमारा जाना होता है तब हमारा प्रलय कहलाता है। इसे खण्ड प्रलय भी कहते हैं । जब वही ईश्वर हमारी रचना करके हमारे ही हृदय में बैठ जाता है तो उससे हमारा जीवात्मस्वरूप जागृत हो जाता है।

प्राणमनोमय- प्राण में हमेशा मन की आहुति होती रहती है एवं मन में प्राण की आहुति होती है। जिस समय मन से किसी की इच्छा करते हैं, इच्छा करते ही वह प्राण उस मन में आहुत हो जाता है। जैसे इच्छा की कि हम अंगुली उठावें। बस इच्छा करते ही अंगुली उठ जाती है। यह जो उठना क्रिया है, वह प्राण का व्यापार है यही प्राण उस मन में आहुत हो जाता है। जहाँ यह आहुति मन पर पड़ी नहीं कि उसकी तृप्ति हुई नहीं, अतः प्राण को मन का अन्न कहा गया है। इसी प्रकार मन की प्राण में भी आहुति होती है। जिस समय कोई काम करते हैं अर्थात् प्राणव्यापार करते हैं। उस समय उसमें मन आहुत रहता है। जब तक वह मन प्राण में आहुत रहता है। तभी तक वह काम हो सकता है। जहाँ मन हटा कि काम अपने आप रुक जाता है। इस प्रकार से मन की प्राण में (काम में मन लगना) एवं मन में प्राण (प्राणस्वरूप कर्म) की आहुति हर समय लगती रहती है इसे ही प्राणमनोमय यज्ञ कहते हैं।

ज्ञानक्रियायज्ञ- यह यज्ञ प्राणमनोयज्ञ से कुछ मिलता-जुलता ही समझना चाहिये। इस ज्ञान क्रिया में एवं क्रिया की ज्ञान में आहुति होने से एक यज्ञ होता है। उसे ही ज्ञानक्रिया यज्ञ कहते हैं। इस प्रकार से इन चारों ही यज्ञों से यह विश्व बना। अतः संसार में केवल यज्ञ ही एक सत्य है ।

यो ब्रह्मकर्मणोर्वा, जीवेश्वरयोस्तथास्ति यो यज्ञः।
प्राणमनः कृतयज्ञो, ज्ञानक्रिययोश्च तत्कृतं विश्वम्॥

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यज्ञ एक निरन्तर चलने वाला व्यापक तत्त्व हैं उस प्रक्रिया में छोटे बड़े यज्ञ होते रहते है। सम्पूर्ण सृष्टि ही यज्ञ है। यज्ञ को विष्णु, प्रजापति और इन्द्र आदि नामों से भी जाना जाता है।